eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 07, July 2025

अर्थशास्त्र विषय की ज्ञान परम्परा में प्राचीन भारत का योगदान

डॉ0 अशोक कुमार[1]
[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर–अर्थशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, मिश्रिख, सीतापुर, उ0प्र0

Received: 20 July 2025 Accepted & Reviewed: 25 July 2025, Published: 31 July 2025

Abstract

विश्व का कोई भी ऐसा विषय क्षेत्र नहीं है जिसे भारतीय ज्ञान परम्परा ने अपनी अविरल ज्ञान धारा से अभिसिंचित न किया हो। भारतीय ज्ञान परम्परा ने न्यूनाधिक रूप से सभी विषय क्षेत्रों में अपना प्रासंगिक योगदान किया है। चाहे दर्शन एवं अध्यात्म का क्षेत्र हो, सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र हो या विज्ञान एवं तकनीकि का, भारतीय मनीषियों एवं विद्वानों ने हर क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों में अपना प्रभावी योगदान देते हुए उसे प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया है। अर्थशास्त्र विषय का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों ने जहाँ अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक धरातल को उर्वर किया तो वहीं दूसरी ओर भारतीय मनीषियों ने इसे अध्यात्मिक रूप से पुष्ट किया। पाश्चात्य विद्वानों ने जहाँ अर्थशास्त्र के अर्थ को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया वहीं भारतीय मनीषियों ने अर्थ के साथ ही धर्म, काम और मोक्ष को भी अपने अध्ययन के केन्द्र में रखा। प्राचीन भारत ने दर्शन, भाषा विज्ञान, अनुष्ठान, व्याकरण, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धान्त, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष एवं संगीत जैसे विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में योगदान देकर मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर किया है। भारतीय मनीषियों में आचार्य बृहस्पति, मनु, शुक्र एवं कौटिल्य के आर्थिक विचार प्रमुख हैं।

कीवर्ड– वृत्ति, कोष, त्रयीविद्या, द्रव्य, श्रुति, स्मृति, पुरूषार्थ, विषिष्टीकरण, आय, व्यय, बाह्य, अभ्यन्तर, आतिथ्य, विशिखा, प्रवेष्य, निष्क्राम्य, प्रवहण, सयानपथ

Introduction

पश्चात्य आर्थिक दर्शन में जहाँ एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है, भारतीय ज्ञान परम्परा में अर्थशास्त्र के जनक रूप में आचार्य बृहस्पति को प्रतिष्ठित किया जाता है। आचार्य बृहस्पति ने चारों पुरूषार्थों–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में से सर्वाधिक महत्व अर्थ को दिया तथा उनके अर्थ में धर्म, काम तथा मोक्ष के अलावा इस संसार के सभी विषय शामिल हैं। एडम स्मिथ के राजनीतिक अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र का इतना व्यापक समावेश नहीं है। आचार्य बृहस्पति ने वर्णाश्रम धर्म को भारतीय समाज के लिए एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य बृहस्पति केवल आपातकाल में ही दूसरी वृत्ति अपनाने की आज्ञा देते हैं। आचार्य बृहस्पति ने धन को ही समस्त आर्थिक क्रियाओं का उद्‌गम माना है। उनके अनुसार सम्पूर्ण व्यावहारिक क्रियाओं का संचालन धन के माध्यम से होता है, अतः उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। राजकोष संवर्द्धन के लिए आचार्य बृहस्पति न्यायोचित ढंग से अधिकाधिक धन प्राप्ति पर जोर देते हैं। आचार्य बृहस्पति धन के समान वितरण के पक्ष में थे और चाहते थे कि उपार्जित किया गया धन समाज में समान रूप से वितरित किया जाय। आचार्य बृहस्पति के अनुसार जो राजा अधिक धन इकट्ठा करने के विचार से जनता पर अधिकाधिक कर लगाता है उस राष्ट्र की वृद्धि नहीं होती वरन राष्ट्र का पतन हो जाता है। बृहस्पति करों के संग्रहण के लिए विश्वासपात्र एवं ईमानदार कर्मचारियों की

नियुक्ति पर जोर देते हैं। बृहस्पति के अनुसार कर निर्धारण निम्न सिद्धान्तों के आाधार पर होना चाहिए–1. लोकहित, 2. शास्त्र विधि अनुकूल, 3. आर्थिक आधार, 4. कर वृद्धि धीरे–धीरे इस प्रकार की जाय कि करों की अधिकता से जनता में असंतोष भी न हो तथा कर के अभाव में कोष भी क्षीण न हो।

आचार्य बृहस्पति कृषि पर भी कर लगाने के पक्ष में थे। उनके अनुसार कृषि पर जीविका निर्वाह करने वाले किसान खिल, वर्ष और बसंत की उपज का 1/10, 1/8 तथा 1/6 भाग राजा को दें। यह कर देश की स्थिति के अनुसार छठे महीने या वार्षिक रूप में देना चाहिए। बृहस्पति का मत था कि व्यापारी को शुल्क स्थान पर पहुँच कर अपनी आय का 10वां अंश शुल्क के रूप में देना चाहिए। आचार्य बृहस्पति ने मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति पर भी कर लगाने की बात की है। मृतक शूद्र के धन का 1/10 भाग, मृतक वैश्य के धन का 1/9 भाग तथा मृतक क्षत्रिय के धन का 1/20 भाग राजा को प्राप्त करने का अधिकार है। आचार्य बृहस्पति ने राष्ट्रीय आय का व्यय उचित मदों पर ही करने की सलाह दी है। उनके अनुसार राजकीय व्यय प्रजारक्षण के निमित्त युद्ध, राष्ट्रीय प्रशासन, मंत्रिमण्डल, विभिन्न अधिकारियों के वेतन, राजकीय परिवर्धन की योजनाओं तथा सामाजिक कार्यों आदि पर ही होना चाहिए।

आचार्य मनु के आर्थिक विचार :

मनु को वैदिक संहिताओं में ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। मनु ने ऋगवेद, यजुर्वेद एवं सामवेद में समाविष्ट मौलिक ज्ञान को त्रयीविद्या कहा है। ऋगवेद में ज्ञान, यजुर्वेद में कर्म, सामवेद तथा अथर्ववेद में उपासना तथा विज्ञान विद्या का समावेश है। वेदों में सम्पूर्ण मानव समाज की समस्याएं जैसे–सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय आदि का हल विस्तारपूर्वक मिलता है। इसलिए प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने त्रयी विद्या को अपने अर्थशास्त्रीय विचारों की पृष्ठभूमि माना था। मनु ने भी सम्पूर्ण–मानव समाज के सुव्यवस्थित जीवन का आधार वेदों को माना है।

भूतं भव्यं भविष्य च सर्व वेदात्प्रसिध्यति।
चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्चा श्रमा. पृथक।। (मनुस्मृति 1297)

अर्थात अर्थ मानव जीवन की मूल आवश्यकता है। उसके बिना मानव शरीर जीवित नहीं रह सकता। अर्थ धर्म की भांति मोक्ष मार्ग में सहायक है, क्योंकि यह स्थूल शरीर की आवष्यकता है। अर्थ के बिना धर्म और काम लंगड़ा है। अर्थ के बिना धर्म और काम सिद्ध नहीं होते हैं। मनु के अनुसार 'सब पवित्रताओं में अर्थ की पवित्रता अतिश्रेष्ठ है।'

मनु ने उपभोग, उत्पादन, विनिमय और व्यापार तथा वितरण सम्बन्धी विचार भी दिये हैं। मनु के अनुसार पत्नी की जीविका (भोजन, वस्त्र आदि) का प्रबंध कर पति को विदेष जाना चाहिए। मनु वस्तुओं के उपभोग में नैतिकता को प्रमुख स्थान देता है। वस्तुओं को चुराकर उपभोग करने पर दण्ड का प्रावधान है। मनु शाकाहारी भोजन के पक्ष में थे। मनु ने धन (वैभव) के रहने पर फटे और मैले कपड़े पहनने से मना किया है। मनु के अनुसार आवास ऐसी जगह होना चाहिए जो धान्य, फल–फूल और वृक्षों आदि से रमणीय हो। मनु ने स्वयं द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यस्था में उत्पादन करने का अधिकार केवल वैश्य वर्ण को ही दिया है। मनु ने वर्ण जन्म से न मानकर गुण तथा कर्मानुसार माना है। मनु ने आपातकाल में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को भी उत्पादन करने का अधिकार दिया है। मनु ने कृषि करने के नियमों, कृषि की रक्षा तथा कृषि सम्बन्धी विवादों के निदान हेतु भी नियम बनाये हैं। मिलकर व्यापार करने की चर्चा करते हुए मनु क्रय–विक्रय के नियमों का निर्धारण भी करते हैं। मनु के अनुसार अधिक मूल्यवाली वस्तु में थोड़े मूल्यवाली वस्तु को मिलाकर साधारण वस्तु को अतिउत्तम बताकर तौल में कम या अधिक कर जिससे उसका वास्तविक रूप

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 07, July 2025

मालूम नहीं पड़ता, ऐसी वस्तुएं नहीं बेची जानी चाहिए। मनु के मत में कोई वस्तु खरीदकर या बेंचकर यदि पश्चाताप होने लगे तो वह दस दिन के भीतर वापस कर लेनी चाहिए। मनु ने स्थल तथा जल मार्ग से भी व्यापार का उल्लेख किया है, उनके अनुसार जल एवं स्थल से व्यापार करने वाले व्यक्तियों को अपने लाभ का बीसवां हिस्सा राजा को कर के रूप में देना चाहिए। मनु ने राजा से सम्बद्ध बिक्री करने योग्य सामान–हाथी, घोड़ा, गाड़ी आदि, अकाल के समय अन्न, पशुवध के लिए गाय, भैंस, बैल आदि तथा अधिक लाभ की आषा से दूसरे देश में ले जाने वाले व्यापारी को दण्ड देने हेतु कहा है। मनु के अनुसार राजा को पाँच–पाँच या पंद्रह–पंद्रह दिनों बाद मुख्य व्यापारियों के सामने वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करते रहना चाहिए। राजा तुलामान प्रतिमान तथा तराजू को अच्छी तरह जाँच कर परीक्षा करे तथा प्रति छः मास पर उनकी जाँच कराता रहे। मनुस्मृति में छोटे तौल के लिए छोटे बाटों तथा बड़े तौल के लिए बड़े बाटों के नाम और उनके माप का वर्णन किया है। मनु ने अलग–अलग वस्तुओं को कम तौलने पर अलग–अलग दण्ड का वर्णन किया है।

मनु ने वितरण के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। अर्थव्यवस्था में वैश्य द्वारा जो उत्पादन होता है उसका वितरण राजा की व्यवस्था के अनुसार किया जाना चाहिए। उत्पादन के वितरण में राज्य का भाग परिश्रम करने वालों का हिस्सा पूँजी का ब्याज और लाभ की एक निश्चित मात्रा निर्धारित की गयी है। मनु के अनुसार भूमि पर राजा का स्वामित्व माना गया है। अतः लगान लेने का अधिकारी भी राजा अथवा राज्य ही है। मजदूरी के विषय में भी मनु के विचार प्रासंगिक हैं। मनुस्मृति में श्रमिकों, कर्मचारियों आदि की एक निश्चित वेतन राशि निर्धारित है। मनुस्मृति में राजा को निर्देश दिए गये हैं कि राजकार्य में नियुक्त दास–दासियों के लिए कार्य के अनुसार प्रतिदिन का वेतन एवं स्थान निश्चित करें। मनु ने वेतन के नियमों का भी निर्धारण मनुस्मृति में किया है। मनु के ब्याज विषयक विचार बहुत क्रांतिकारी हैं। मनु के शब्दों में 'ब्याज पर ऋण देने के लिए महाजन वशिष्ठ मुनि द्वारा प्रतिपादित धनवर्द्धक सूद लें, उसे ऋण द्रव्य का 1/80 भाग अर्थात सवा रूपया प्रतिषत सूद लेना चाहिए'। मनु ने वर्णों के अनुसार भी ब्याज दर का निर्धारण किया है। उनके अनुसार ब्राह्मण से दो रूपया सैकड़ा तथा शूद्र से पाँच रूपया सैकड़ा ब्याज लेना चाहिए। मनु के करारोपण सम्बन्धी विचार भी उल्लेखनीय हैं। मनु ने राजा को परामर्श दिया है कि वह अपनी प्रजा से न्यायपूर्वक करों की प्राप्ति करें। वे कर व्यवस्था के सम्बन्ध में शासक की निरंकुशता को प्रतिबन्धित करते हैं। मनु के करारोपण सम्बन्धी नियम सकारात्मक हैं। मनु के अनुसार राजा खरीद–ब्रिकी मार्ग, भोजन मार्ग आदि में चोर आदि से रक्षा का व्यय तथा लाभ को देखकर व्यापारी से कर लेवे। जिस प्रकार जोक, बछड़ा और भ्रमर थोड़े–थोड़े अपने–अपने खाद्य (क्रमशः रक्त, दूध और मधु) को ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा को प्रजा से थोड़ा–थोड़ा वार्षिक कर ग्रहण करना चाहिए।

आचार्य शुक्र के आर्थिक विचार :

भारतीय नीतिषास्त्र के इतिहास में शुक्र का नाम बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है। शुक्र ने अर्थशास्त्र को ज्ञान की 32 शाखाओं में से एक शाखा के रूप में परिभाषित किया है। आचार्य शुक्र ने अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है कि,''जिसमें श्रुति तथा स्मृति के अविरूद्ध (अनुकूल) राजाओं के लिए आचरण के विषय में उपदेश किया गया हो तथा अच्छे कौशल से धन अर्जन की विधि कही गई हो, उसे 'अर्थशास्त्र' कहते हैं।'' शुक्रनीति में राजा को आठ तरह के आचरण करने के लिए निर्देष हैं–1. दुष्टों का निग्रह करना, 2.दान देना, 3. प्रजा का परिपालन, 4. राजसूर्यादि यज्ञ, 5. न्यायपूर्वक कोष बढ़ाना, 6. राजाओं से कर वसूल करना, 7. शत्रुओं का मान मर्दन करना, 8. बार–बार राज्य को बढ़ाना। शुक्रनीति में धनार्जन करने वाले

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 07, July 2025

व्यक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। यदि कोई मनुष्य धर्म तथा अर्थ से समर्थ है अर्थात् धर्मानुसार अर्थार्जन करने में निपुण है और देश काल का ज्ञाता अर्थात तदनुसार कार्य करने वाला एवं संशय रहित है तो वही सदा पूज्य होता है। शुक्र के अनुसार मनुष्य अर्थ का दास है न कि पुरूष का दास अर्थ होता है। अतः अर्थ के लिए सदा प्रयत्नपूर्वक यत्नशील रहना चाहिए। मनुष्यों को अर्थ से ही धर्म, काम तथा मोक्ष जैसे सभी पुरूषार्थ प्राप्त होते हैं। शुक्र के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसके माध्यम से मनुष्य को अधिकतम सम्भव सन्तोष प्राप्त होता है। शुक्रनीति के अनुसार विद्या तथा धन चाहने वाले को नित्य कर्म से क्षण तथा कण का त्याग नहीं करना चाहिए। क्षण–क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का एवं कण–कण भर का संग्रह कर धन का अर्जन करना चाहिए। परन्तु शुक्र ने मान–सम्मान से कमाए हुए धन को ही उत्तम माना है।

शुक्रनीति में उपभोग सम्बन्धी विचार भी मिलते हैं। आचार्य शुक्र ने मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं के रूप में अन्न, वस्त्र, मकान, चिकित्सा तथा शिक्षा पर आवश्यक रूप से विचार किया है। उनके अनुसार राजा का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की इन भौतिक पदार्थों की पूर्ति निश्चित रूप से करे। उपभोग की चर्चा करते हुए आचार्य कहते हैं कि मनुष्यों को सदा समय पर मिलकर तथा उचित मात्रा के साथ आहार–विहार, देवादि को भोग लगाकर प्रसाद–भोजन, अकातर स्वभाव, अच्छी तरह से सोना तथा शरीर एवं मन से पवित्र रहना चाहिए। इन सब विषयों को सदा करना चाहिए। देवता, पितृगण तथा अतिथियों को बिना दिये कभी भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो मोहवश केवल अपने लिए भोजन बनाता है तथा देवादि को बिना दिये भोजन करता है उसका जीवन नरक के लिए होता है। अति उपभोगवाद पर कटाक्ष करते हुए आचार्य शुक्र ने बताया है कि जो मनुष्य उपभोग के सम्बन्ध में ज्यादा आशा लगाये रहते हैं उनके लिए ब्राह्माण्ड के अन्दर उपलब्ध वस्तुएं भी उनकी थोड़ी सी इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होतीं अर्थात् ब्राह्माण्ड की सारी वस्तुएं भी उपलब्ध करा दी जायं तो भी उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकती।

आचार्य शुक्र ने एक श्रेष्ठ व्यवसायी के लिए भी निर्देश जारी किये हैं। उनके अनुसार जानकार व्यवसायी को किसी कार्य (व्यवसाय) को प्रारम्भ करने से पूर्व यह देखना चाहिए कि कार्य (व्यवसाय) कैसा है? इस कार्य के कौन–कौन से साधन हैं? इसमें कितना व्यय होने की सम्भावना है? उसके माल की खपत कहाँ–कहाँ है? उस पर कितना व्यय होगा तथा कितने लाभ की सम्भावना है? इन सब बातों पर भलीभांति विचार करता है अन्यथा वह कोई छोटे से छोटा व्यवसाय भी नहीं करता। परन्तु लाभ कमाने में भी शुक्र ने नैतिकता को महत्व दिया है। आचार्य ने कहा है कि जिस आजीविका से अपने धर्म की हानि न हो वही आजीविका श्रेष्ठ होती है। जिस देश में अपने कुटुम्ब का भलीभांति पोषण हो वही देश सबसे अच्छा। विभिन्न आजीविकाओं की चर्चा करते हुए आचार्य ने बताया है कि नदी से सिंचाई की जाने वाली कृषि उत्तम आजीविका होती है। वैश्य वृत्ति मध्यम आजीविका है। शूद्र वृत्ति अधम आजीविका है। इस तरह आचार्य ने वैयक्तिक व्यवसाय को नौकरी (सेवा) की तुलना में श्रेष्ठ माना है। भिक्षावृत्ति अधम आजीविका है किन्तु तपस्वियों के लिए उत्तम है। आचार्य शुक्र ने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था को मान्यता दी परन्तु उन्होंने वर्ण का आधार जन्म के स्थान पर व्यक्ति के गुण एवं कार्य को माना है। आचार्य शुक्र ने कर्म की महत्ता पर भी प्रकाश डाला है। उनके अनुसार इस संसार में सुगति या दुर्गति के पीछे कर्म ही कारण होता है। पूर्व जन्म के कर्म ही प्रारब्ध होते हैं। बिना कर्म के कोई भी जीव क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता है। उनके अनुसार भाग्य और पुरूषार्थ इन दोनों के ऊपर ही सम्पूर्ण जगत के कार्य स्थित हैं। इनमें पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म, भाग्य और इस जन्म में किया हुआ कर्म पुरूषार्थ कहलाता है। शुक्रनीति में भी उत्पादन का

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 07, July 2025

अधिकार वैश्य वर्ण को ही दिया गया है। कहीं–कहीं ब्राह्मणों को भी उत्पादन करने का अधिकार दिया गया है। शुक्र ने भूमि को उत्पादन का प्रमुख साधन माना है। भूमि सम्पूर्ण धनों की खान है। भूमि के कारण ही राजा भूमिपति कहलाता है। आचार्य शुक्र ने खेती को धन प्राप्ति का उत्तम साधन माना है। उनके अनुसार वनसम्पदा का संरक्षण करना चाहिए और नये–नये वृक्ष व्यवस्थित ढंग से लगवाये जाने चाहिए।

आचार्य शुक्र ने उद्योग–व्यसाय में श्रम के विशिष्टीकरण को महत्व दिया है। उनके अनुसार जो व्यक्ति जिस कार्य को करने में दक्ष हो उसी कार्य को करे। आचार्य शुक्र ने विनिमय सम्बन्धी विचार भी दिए हैं। उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु के लिए स्वार्णादि मुद्राएं निष्चित हैं। लोक व्यवहार में लेन–देन के लिए ढाले गये चांदी, सोना एवं तांबे के सिक्कों का उपयोग प्रजा द्वारा किया जाना चाहिए। उन्होंने कौड़ी से लेकर बहुमूल्य धातुओं को द्रव्य की संज्ञा दी। परन्तु उन्होंने द्रव्य को धन से अलग किया। धन में शुक्र ने पशुधन, वस्त्र से लेकर तृण पर्यन्त तक को शामिल किया। आचार्य शुक्र ने मनुष्य के धनवान बनने के लिए जिन वृत्तियों का वर्णन किया है उसमें ब्याज पर रूपया उधार देना, खेती करना, सुन्दर विद्या उपार्जन, दुकानदारी, संगीत आदि कला के द्वारा, दान लेकर मनुष्य धनवान बन सके और उसी के अनुकूल कार्य करे। शुक्र के अनुसार व्यवसाय करने वालों के लिए लेख से बढ़कर दूसरा कोई स्मरण सूचक चिन्ह नहीं है इसलिए बुद्धिमान को सदा बिना लेख के व्यापार हेतु लेन–देन नहीं करना चाहिए। ऋण लेने वाले को ब्याज देने में समर्थ देखकर सदा बंधक या किसी जमानत पर और किसी की गवाही के साथ लिखा–पढ़ी करके उचित मात्रा में सुखपूर्वक लौटाने लायक धन देना चाहिए। इसके बिना धन उधार नहीं देना चाहिए नहीं तो मूलधन नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। मित्रता को स्थायी बनाने के लिए आचार्य ने सलाह दी है कि मित्र को दूसरे मित्र से शाश्वत मैत्री रखने के लिए आपस में धन का लेन–देन (ऋणादि) नहीं करना चाहिए। आचार्य शुक्र के अनुसार प्रतिवर्ष–प्रतिमास तथा प्रतिदिन जो सोना, पशु तथा धान्य आदि अपने अधीन हो जाता है अर्थात अपने पास आता है उसे आय कहते हैं। तथा जो सोना, पशु एवं धान्य दूसरों के अधीन कर दिया जाता है उसे व्यय कहते हैं। शुक्र के अनुसार हृदय में उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता (कंजूसी) रखकर समय आने पर उचित व्यय मनुष्य को करना चाहिए अन्यथा नहीं करना चाहिए। करारोपण के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र कहते हैं कि सदा कर ग्रहण करने का अभिलाषी राजा प्रथम भूमि का नाप कर और उससे बहुत मध्यम या कम पैदावार को समझ कर तदनुसार कर का निश्चय करे तथा कृषक से उतना ही उसूल करे जितने से वह नष्ट न होवे। कर की मात्रा के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र का मत था कि जिस प्रकार माली जैसे लता आदि से थोड़ा–थोड़ा फूल चुनता है उसी भांति राजा भी थोड़ा कर लेवे किन्तु जैसे कोयला बनाने वाला सम्पूर्ण वृक्षों को जड़ सहित जलाकर कोयला बनाता है वैसे सम्पूर्ण आयकर रूप में न लेवे। शुक्र ने कर व्यवस्था को लोक–कल्याणकारी राज्य की अपेक्षाओं के अनुरूप स्वरूप प्रदान किया है। शुक्र के अनुसार समस्त वस्तुओं पर प्रयत्नपूर्वक एक बार ही चुंगी ली जानी चाहिए। शासक को खरीदने एवं बेंचने वाले से वस्तु के मूल्य का 32 वां अंश चुंगी के रूप में ग्रहण करे अथवा मूलधन छोड़कर लाभ में से बीसवां या सोलहवां अंश चुंगी ले। शुक्र के अनुसार राजा शत्रु को जीतकर योग्यतानुसार उससे कर (मालगुजारी) ग्रहण करे और कभी–कभी योग्यतानुसार शत्रु के राज्य का आधा अंश या सम्पूर्ण राज्य को ही अपहरण कर ले, फिर शत्रु की प्रजा को हर प्रकार से प्रसन्न रखे। शुक्र ने अपराधियों के दण्ड से प्राप्त जुर्माना आदि से प्राप्त भाग को भी राज्य आय का साधन माना है। शुक्र को समाजवादी विचारों का समर्थक भी माना जाता है। उनके अनुसार व्यक्ति उपभोग के साधनों पर ही अपना स्वामित्व मान सकता

है उत्पादन के साधन–खेत, खदान, जंगल पर नहीं। उत्पादन के साधनों पर सबका स्वामित्व है। अकेले खाना शुक्र की दृष्टि में पाप है, जो अज्ञान से भी अपने लिए पकाता है, वह नरक के लिए जीता है।

आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचार :

आचार्य कौटिल्य अर्थशास्त्र के प्रणेता माने जाते हैं। कौटिल्य को चाणक्य एवं विष्णुगुप्त आदि नामों से भी जाना जाता है। चूंकि कौटिल्य की विचारधारा परम्परागत आदर्शवाद के विरोध में भौतिकवाद पर जोर देती है जो धर्माचार्यों को उचित प्रतीत नहीं हुई इसीलिए कुटिलता का पुट देने के लिए उन्हें 'कौटिल्य' नाम दिया गया। कौटिल्य का अर्थषास्त्र प्राचीन चिंतन की नीति–शास्त्र परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। हालांकि कौटिल्य का अर्थशास्त्र उस विषय सामग्री से नहीं सम्बन्धित है जिसे आज का अर्थशास्त्र का विद्यार्थी अपने अध्ययन की मुख्य सामग्री मानता है। परन्तु यह रचना अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए समान रूप से उपयोगी है। यह हमें तत्कालीन समय की उन आर्थिक अवधारणाओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है, जिन्हें हम वर्तमान में भी लागू कर सकते हैं। कौटिल्य ने अर्थ, धर्म एवं काम के आाधार पर ही मानव जीवन को विभक्त किया है और इन तीनों में से उन्होंने अर्थ को प्रधानता दी क्योंकि बिना अर्थ के किसी भी प्रकार की क्रिया सम्भव नहीं हो सकती थी। इहलौकि पुरूषार्थों में धर्म का स्थान सर्वोपरि माना गया है। परन्तु अर्थशास्त्र की प्रसिद्धि का मुख्य कारण यह है कि इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम संस्थापित तथा परम्परागत धर्मप्रधान विचारों के विरोध में अर्थप्रधान विचारों का प्रतिपादन किया गया। इस सम्बन्ध में हम 'अर्थशास्त्र' को भारतीय आर्थिक विचारों के इतिहास में वही स्थान दे सकते हैं, जो 16वीं एवं 18वीं शताब्दी के बीच यूरोप में केमरवाद को मिला। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की परिभाषा देते हुए लिखा है,''मनुष्यों के व्यवहार या जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि का नाम ही अर्थ है। इस भूमि को प्राप्त करने और रक्षा करने के उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र ही अर्थषास्त्र कहलाता है।'' कौटिल्य के अनुसार, 'सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है और अर्थ का मूल राज्य है।'(सुखस्य मूल धर्म धर्मस्य मूल अर्थ। अर्थस्य मूल राज्यम्।।) उनके अनुसार,''संसार में धन ही वस्तु है, धन के अधीन धर्म और काम है।'' इन विचारों से सिद्ध हो जाता है मार्षल, पीगू आदि अर्थशास्त्रियों की परिभाषाएं कौटिल्य के इन विचारों से मेल खाती हैं। कौटिल्य ने भी तत्कालीन समाज को विभिन्न वर्गों में विभक्त कर उनकी क्रियाओं पर अलग–अलग विचार किया है। उन्होंने भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्श्य तथा शूद्र आदि के लिए आर्थिक आधार पर प्रतिपादन कर सामाजिक व्यवस्था को सही मार्ग बताया है। राष्ट्र के संवर्द्धन हेतु राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह समय–समय पर उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का सामना करने के लिए आय की अधिकाधिक वृद्धि करे। कोष की कमी को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर अतिरिक्त कर बढाने को कहा गया है।

शुल्क के सम्बन्ध में जितना विस्तृत विवेचन कौटिल्य ने किया है उतना किसी अन्य प्राचीन अर्थशास्त्री ने नहीं किया। कर की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा है कि राजा को दिए जाने वाले अंश का नाम शुल्क (चुंगी टैक्स) है, इस कार्य पर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को 'शुल्काध्यक्ष' कहा गया है। ''शुल्क अधिक देने के डर से जो व्यापारी अपने माल के परिमाण को और मूल्य को कम करके बतावे, उसके बताये हुए परिमाण से अधिक माल राज ले लेवे। अथवा उस व्यापारी से इस अपराध में 8 गुना शुल्क वसूल किया जाय। ''यदि कोई व्यक्ति चुंगी योग्य पदार्थ बिना चुंगी दिए ले जाने का प्रयत्न करे तो उस पर देय चुंगी के समान भाग अर्थदण्ड देना चाहिए। कौटिल्य ने शुल्क के तीन विभाग बताए हैं–1. बाह्य 2. अभ्यन्तर 3. आतिथ्य। अपने देश में उत्पन्न हुई वस्तुओं पर लगने वाली चुंगी को बाह्य, दुर्ग तथा राजधानी आदि के

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 07, July 2025

भीतर उत्पन्न हुई वस्तुओं के शुल्क को अभ्यान्तर तथा विदेश से आने वाले माल की चुंगी आतिथ्य कहलाती थी। करारोपण के सम्बन्ध में भी आचार्य कौटिल्य द्वारा दिये गये नियम (Canon) महत्वपूर्ण हैं। कौटिल्य के अनुसार कृषि में लगे करों को तभी लेना चाहिए जब फसल पकी हो। इसे सुविधा का नियम (Canon of Convenience) कह सकते हैं। निश्चितता का नियम (Canon of Certainity) पालन के लिए हर कर या देय कर की दर राज्य द्वारा निर्धारित है और हर अधिकारी के ऊपर कड़ी निगरानी रखी जाती है। कौटिल्य अपव्यय के सदा विरोध में रहे हैं उनका कथन है कि जितना धन प्रजा से लिया जाय वह सम्पूर्ण धन राजकोष मे ंजमा हो। यह मितव्ययिता के सिद्धान्त का द्योतक है। उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि कर उन्हीं से लिया जाय जो कर देने में समर्थ हों जो कि आधुनिक प्रगतिशील करारोपण के अनुकूल है। कौटिल्य के अधिकांश नियम कर उत्पादकता के सिद्धान्त पर आधारित थे। विषेषकर भूमिकर जो कि सबसे महत्वपूर्ण कर था, भूमि की उपज के अनुपात में लिया जाता था। आयात–निर्यात कर भी मूल्यानुसार लिये जाते थे। इसी प्रकार क्रय–विक्रय कर भी वस्तुओं के मूल्य के ही अनुसार थे। तात्पर्य है कि कर व्यवस्था में पर्याप्त लोच थी और यह कर देय–क्षमता (Ability to Pay) के सिद्धान्त पर आधारित थी।

आचार्य कौटिल्य ने अन्नों का उत्पादन करने की प्रकियाएं बताई हैं। साथ ही खाद, सिंचाई आदि साधनों द्वारा कैसे उत्पत्ति में वृद्धि की जा सकती है इसका भी उल्लेख प्राप्त होता है। कृषि उत्पादन के साथ ही आभूषणों, रत्नों, शिल्प सामग्री और सूती–ऊनी कपड़ों का भी उत्पादन किया जाता था। कृषि भूमि एवं गैर–कृषि भूमि का बँटवारा कर अधिकाधिक उत्पादन के लिए उन्होंने प्रोत्साहित किया है। कौटिल्य का विचार था कि जिस भूमि में कृषि न की जा सके वहाँ पशुओं के लिए चारागाह आदि बनवा दिये जाने चाहिए। कृषि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। समाज के लोग जितनी भूमि अपने अधिकार में रखकर उत्पादन करते थे उसके बदले वे राजा को 1/6 भाग कर के रूप में देते थे। कौटिल्य ने नदी, झील, तालाब और कुओं से सिंचाई करने पर उपज का चौथा हिस्सा राजा को देने के निर्देश दिये हैं। वाणिज्य–व्यापार के अन्तर्गत कौटिल्य ने सोने के व्यापार को प्रमुखता दी है। जिस बाजार में सोने का क्रय–विक्रय होता था उसे 'विशिखा' बताया गया है। आयात एवं निर्यात दोनों ही प्रकार की सामग्री पर कर लगाये जाने का प्राविधान था। आयात कर को 'प्रवेश्य' और निर्यात कर को 'निष्क्राम्य' कहते थे। विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए कौटिल्य ने कई सुविधाओं का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र के अनुसार विदेशी माल को अनुग्रह से देश में प्रवेश कराया जाय। इसके लिए नाविकों और विदेशी व्यापारियों को लाभ से अधिक लिए जाने वाले कर से मुक्त कर दिया जाय। समुद्र से होने वाले जल मार्गों को कौटिल्य ने 'सयानपथ' के नाम से पुकारा है। समुद्र में आने–जाने वाले जहाज 'प्रवहण' कहलाते थे। बंदरगाहों पर जहाजों के प्रवेष और निष्क्रमण के लिए पर्याप्त प्रबन्ध था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य व्यापार को प्रधानता दी गई है, परन्तु राज्य व्यापार जनता के हित में ही व्यवस्थित किया गया था। व्यापारिक विधान के मुख्यतः दो प्रमुख उद्येश्य थे–राज्य की आय में वृद्धि और उपभोक्ता का संरक्षण। विदेशी व्यापार में आयात को प्रोत्साहन देने के साथ ही उन्होंने इस बात पर भी ध्यान रखा कि निर्यात की गयी वस्तुएं सलाभ बिकें। कौटिल्य ने व्यवसायों में कृषि को सर्वोपरि रखा। श्रमिकों की मजदूरी के सम्बन्ध में कौटिल्य ने कहा कि किसान अनाज का, ग्वाला घी का और खरीद–फरोख्त करने वाला अपने द्वारा व्यवहृत हुई चीजों का दसवाँ हिस्सा लेवे, बशर्ते कि वेतन पहले से तय न हुआ हो। कौटिल्य ने स्त्रियों को भी वेतन के साथ श्रमिक का कार्य देने की वकालत की है। आचार्य कौटिल्य ने श्रमिक संघों का भी उल्लेख अर्थषास्त्र

में किया है। संघों के लिए निर्देश था कि वे बताये गये नियमों पर ही कार्य करें। नियमों को पालन न करने पर दण्ड का विधान था।

कौटिल्य ने मुद्रा व्यवस्था के बारे में भी अपने विचार दिये हैं। कौटिल्य ने द्रव्य के दो कार्य माने हैं–1. विनिमय का माध्यम, 2. कोष में धन जमा करने के लिए विधिग्राह्य माध्यम। स्वर्ण एवं चांदी की विनिमय दरें भी निर्धारित की गयी थीं। स्वर्ण एंव चांदी के बीच विनिमय दर 12 पण स्वर्ण = 200 पण चांदी या 1 स्वर्ण = 16.67 चांदी थी। उस समय बाजार के संगठन का इतना अच्छा प्रबन्ध था कि थोड़ी सी भी चोर बाजारी करने वाले दुकानदार को दण्ड का भागी होना पड़ता था। बाजारों की देखरेख के लिए एक निरीक्षक होता था जिसे 'पण्याध्यक्ष' कहते थे। माप–तौल की जांच के लिए 'पटवाध्यक्ष' नाम के अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। आचार्य कौटिल्य ने लाभ के सिद्धान्त भी बताये हैं। उन्होंने स्थानीय उत्पादित वस्तुओं में 5 प्रतिशत तथा विदेशी वस्तुओं पर क्रय से 10 प्रतिशत लाभ लेने के नियम बताये हैं। समाहर्ता, गोप एवं स्थानिक आदि अधिकारियों के माध्यम से राज्य की आय प्राप्त की जाती थी। इन सभी का अपना–अपना क्षेत्र बंटा हुआ था। कर तथा कृषि से प्राप्त उत्पादन का हिस्सा ही आय का प्रमुख स्रोत था।

आचार्य कौटिल्य ने ऋण एंव ब्याज सम्बन्धी नियम भी स्पष्ट किये हैं। उनके अनुसार 100 पण पर एक महीने में 1–1/4 पण ब्याज लेना उचित है। व्यापारियों से 5 पण, जंगल में रहने वाले से 10 पण ब्याज लेने का नियम था। समुद्र में आने वाले अथवा वहाँ व्यापार करने वालों से 20 पण ब्याज लेने को कहा गया है। परन्तु कौटिल्य ने गुरूकुल में अध्ययन करने वाले व्यक्ति, बालक या शक्तिहीन पुरूष पर जो ऋण हो उसे ब्याज निषिद्ध बताया है। कौटिल्य ने राजकीय आय के स्रोतों के साथ ही सार्वजनिक व्यय की मदों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने सार्वजनिक व्यय की निम्न प्रमुख मदें बतायी हैं–1. धार्मिक कार्य 2. राजकीय गृहकार्यों का प्रबन्ध 3. अधिकारिक वेतन का भुगतान 4. कारखानों का प्रबन्ध 5. श्रमिकों का भुगतान 6. कृषि उत्पादन पर व्यय 7. सैन्य शक्ति का संगठन 8. शिक्षण संस्थाओं की स्थापना 9. वैधव्यपालन 10.जनहित कार्य, सड़कों, नहरों आदि का निर्माण 11. बच्चों, अधिकारियों, सेना के लोगों को पेंशन। उपर्युक्त आर्थिक विषयों के अतिरिक्त जनसंख्या का विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा तत्सम्बन्धी आंकड़े एकत्र किये जाने का उल्लेख भी अर्थषास्त्र में मिलता है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों के उपर्युक्त आर्थिक विचारों के विवेचन स्पष्ट है कि उन्होंने आधुनिक अर्थशास्त्रियों के समान ही उपभोग, उत्पादन, विनिमय एवं वितरण के सम्बन्ध में नियमों का प्रतिपादन किया था। यह सभी नियम सैद्धान्तिक रूप से उतने सटीक भले ही न रहे हों परन्तु उनकी व्यावहारिकता बेजोड़ है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने करारोपण, सार्वजनिक व्यय, ऋण एवं ब्याज, लाभ के नियमों, बाजार संगठन, मापतौल, मुद्रा व्यवस्था, बचत–निवेश, श्रमिक संघ, वाणिज्य–व्यवसाय, कृषि, सिंचाई, आयात–निर्यात, पर्यटन, भंडारण, दान आदि विषयों पर जितने विषद ढंग से विवेचन प्रस्तुत किया है वह पाश्चात्य जगत के विद्वानों के विवेचन के सापेक्ष समान रूप से श्रेष्ठ है।

संदर्भ :–

1. मुनस्मृति, मनु,।
2. शुक्रनीति, शुक्राचार्य,।
3. शुक्रनीति, डॉ0 उमेश पुरी, ज्ञानेष्वर रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, पृ0 146–148
4. कौटलीय अर्थशास्त्रम, कौटिल्य।

5. दशकुमार चरित, दंडी उत्तरपीठ 8।
6. धर्मशास्त्र का इतिहास, काणे, पी0वी0, पृ0 43।
7. भारतीय आर्थिक चिंतन, डॉ0 एम0एल0 छीपा एवं शंकर लाल शर्मा, कालेज बुक हाउस (प्रा0 लि0), चौड़ा रास्ता, जयपुर–3, द्वितीय संस्करण–2004, पृष्ठ 1 से 192।
8. भारतीय आर्थिक चिंतन का इतिहास, डॉ0 ओ0पी0 मिश्र, चन्द्र लोक प्रकाशन कानपुर, जनवरी 2021।
9. इंडियन नॉलेज सिस्टम्स, कपिल कपूर एवं अवधेश कुमार सिंह, डी0के0 प्रिन्ट वर्ल्ड लि0, प्रथम संस्करण–2005।